RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-03
Issue-12
December -2018

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

पूर्व मध्यकाल में कृषि, शिल्प एवं व्यापार के अन्तर्गत सामाजिक एवं आर्थिक रूपांतरण

डॉ0 दुर्गेश कुमार सिंह

'प्राचार्य' (इतिहास विभाग), स्वतंत्र गर्ल्स डिग्री कालेज, स्नेह नगर, आलमबाग, लखनऊ

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 10 December 2018

Keywords
भूमि अनुदान की प्रथा, सामंतवाद का उदय, कृषि की स्थिति, शिल्पकारों की स्थिति, व्यापार एवं वाणिज्य की स्थिति।

ABSTRACT

सामंतवादी व्यवस्था के उद्भव एवं गांवों के आत्मनिर्भर होने के कारण पूर्व मध्यकाल में कृषि की उन्नति हुई, शिल्प एवं व्यापार में अभूतपूर्व परिवर्तन हुए। इस काल में कृषि ही भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार थी। इस काल में सिंचाई के साधनों में बहुत वृद्धि हुई थी। इस काल में व्यापारिक मार्ग अधिक सुरक्षित नहीं थे। समुद्री व्यापार में अरब व्यापारियों का बोल–बाला अधिक था। चीन के साथ भारत का व्यापार कम हो गया था। इस काल में वस्त्र उद्योग अत्यन्त उन्नत अवस्था में था। शिल्प और उद्योग श्रेणियों में संगठित थे। साधारण लेन–देन और व्यापार कौड़ियों के माध्यम से होता था। इस काल में साधारणतः किसान भूमि–पतियों के असहाय आश्रित बनकर रह गये थे। सामुदायिक भू–स्वामित्व समाप्त हो गया था।

शोध का उद्देश्यः–

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य पूर्व मध्यकाल में कृषि, कृषक, शिल्प, शिल्पकार, व्यापार एवं व्यापारियों की स्थिति का अध्ययन करते हुए यह पता लगाना है कि इनसे किस प्रकार तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में अभूतपूर्व बदलाव आया।

शोध का महत्वः–

इस शोध का महत्व है कि उस काल में कृषकों, कलाकारों और व्यापारियों की स्थिति का ज्ञान हमें वर्तमान परिस्थितियों से तुलनात्मक ढ़ंग से देखकर यह समझना कि हम उस समय किस अवस्था में रहे और आज किस अवस्था में है।

शोध प्रविधिः–

इस शोधपत्र में हमने पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत की आर्थिक स्थितियों को आधार बनाकर मुख्यतः सामन्तवाद के उदय से उत्पन्न घटनाओं का अध्ययन करने हेतु विभिन्न लिखित पुस्तकों के विवरणात्मक तथ्यों और पत्र–पत्रिकाओं के विवरण का प्रयोग किया है।

प्रस्तावना :

जिस तथ्य ने प्राचीन भारतीय समाज को मध्यकालीन समाज में रूपांतरित किया, वह थी भूमि अनुदान की प्रथा। विभिन्न शासकों द्वारा जारी किये गये, अधिकार पत्रों से ज्ञात होता है कि पुरोहितों और पुजारियों को भूमिदान पुण्य अर्जित करने के लिए दिये जाते थे किन्तु वस्तुतः इसके पीछे युगजनित व्यवस्था का बहुत बड़ा हाथ था। भूमि अनुदान–प्रथा सामंती अर्थव्यवस्था का आधार बनी। इस प्रथा का जन्म क्यों हुआ? ऐसा मालूम पड़ता है कि इस प्रथा का उद्भव प्राचीन समाज व्यवस्था को आर्थिक आधार पर आये, गंभीर संकट से हुआ। इस समय वर्ण विभाजित समाज ने वैश्य कहलाने वाले किसान तथा शूद्र कहलाने वाले श्रमिक उत्पादन में लगे रहते थे। राज्याधिकारियों द्वारा वसूल किये गये करों से राजा अपने महलों का खर्च चलाता, सिपाहियों का वेतन देता था, पुरोहितों को दान–दक्षिणा से धन्य करता था, वर्णिकों और बड़े–बड़े शिल्पियों से अपने लिये ऐशो–इशरत और जरूरत की चीजें खरीदता था। इस शोध में हम इन्हीं प्रमुख बिंदुओं पर अध्ययन करेंगे कि राजाओं द्वारा भूमिदान से सामंतवादी प्रथा का जन्म हुआ और इस सामंतवादी व्यवस्था से उस समय के कृषकों, शिल्पियों और व्यापारियों की स्थिति पर कितना फर्क पड़ा? इस काल में इनकी स्थिति कितना परिवर्तन हुआ? उस समय की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक स्थिति कैसी रही? प्राचीन काल और मध्यकाल के बीच में इस समय कैसी व्यवस्थाओं ने जन्म लिया? छठीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक हम इस तथ्य का अध्ययन न कर, कृषि, शिल्प, व्यापार की स्थिति का पता लगायेंगे।

विवेचना –

भूमि अनुदान की प्रथा : गुप्तोत्तर काल में सरकारी अधिकारियों की सेवा का प्रतिदान देने की पद्धति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। यदि कौटिल्य के आधार पर देखे तो प्राक्–गुप्तकाल में उच्चतम् अधिकारी से लेकर निम्नतर तक सबका नकद भुगतान किया जाता था। नकद भुगतान की संभावना की पुष्टि इस बात से भी होती है कि खासतौर पर चांदी के जिसमें आहत सिक्कें प्राप्त होते हैं उनमें सबसे अधिक संख्या मौर्यकालीन सिक्कों की हैं। सिक्कों की कमी कुषाणों के अधीन भी नहीं थी। उनके शासन काल में विशेष कर तांबे के सिक्के प्रचुर मात्रा में मिले हैं। यद्यपि सोने के सिक्कें भी बड़े पैमाने पर जारी किये गये, सिक्कों में सबसे बड़े सिक्कों की संख्या सातवाहनों के सिक्कों की हैं। गुप्तकाल तक तो उच्चाधिकारियों को नकद सिक्कों के रूप में भुगतान किया जाता था किन्तु हर्ष के काल तक आते–आते इन राज्याधिकारियों को नकद भुगतान नहीं किया जाता था। चीनी यात्री हुआन्त सांग के अनुसार प्राचीन शासकों, सामंतों, मंत्रियों, दण्डाधीशों तथा अन्य अधिकारियों को वेतन के बदले उनके खर्चों के लिए जमीन देने की प्रथा आरम्भ हो चुकी थी।

RRIJM 2015, All Rights Reserved

ह्वेन सांग ने शूद्रों को किसान कहा है आरम्भिक धर्मशास्त्रों कौटिल्य के अर्थशास्त्र एवं अन्य ग्रन्थों में शूद्रों को भूमि हीन श्रमिकों के रूप में दिखाया गया है। जिनसे उच्च वर्ण के लोग मजदूरी और खेती बाड़ी का काम करवाते थे। मध्यप्रदेश में शूद्र, दास तथा खेतीहर मजदूर कैसे और क्यों? पट्टेदार तथा काश्तकार बन गये? इसका उत्तर उस काल में उत्पादन सम्बन्धों में आये संकटों में देखा जा सकता है। पांचवी, छठी सदियों में ब्राह्मणों को भूमि अनुदान दिया जाने लगा।

सामंतवाद का उदयः ईसवीं सन् की चौथी सदी के मध्य से ब्राह्मणों को भूमि–अनुदान देने के प्रसंगों में तेजी आ जाती है। भूमि के राजस्व के सभी स्रोत गृहीताओं को हस्तांतरित कर दिये जाते थे। शांति, सुव्यवस्था तथा प्रशासन के काम भी उन्हीं को सौंप दिये जाते थे। दूसरी सदी के अनुदान पत्रों में हम राजा को केवल नमक पर अपने अधिकार का त्याग करते देखते है। वाकाटक राजाओं को हम प्रायः राजस्व के समस्त स्रोतों–यथा–चरागाह, चमड़ा, लकड़ी, कोयला, खान, बेठ–बेगार और नीतियों का परिहार करते देखते हैं। अनुदान भोगियों को कराधान के साथ–साथ दण्ड के प्रयोग का अधिकार भी मिल जाता है। जिसमें सत्ता अथवा राजसत्ता के नये केन्द्र की सृष्टि हो जाती है। इस प्रकार नयी राजनीतिक प्रणाली के अधीन हर बड़े राज्य में काफी सत्ता केन्द्र के हाथ से निकलकर स्थानीय भू–स्वामियों के हाथ में आ गयी और इसी से सामंतवादी व्यवस्था का उदय हुआ।

कृषि की स्थितिः कृषि की उन्नति तथा सामाजिक संघर्ष के कारण शूद्रों के चरित्र में बदलाव आया। अनुदान की भूमि से लगान तथा अन्य लाभों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक था कि अनुदान भोगी उसमें खेती–बाड़ी करवायें। 7वीं सदी के चीनी यात्री इत्सिंग के विवरण से ज्ञात होता है जिन मठों के पास जमीन थी, वे उसमें नौकरों तथा अन्य लोगों से खेती करवाते थे। बैल और खेत मठों की ओर से दिये जाते थे। जिसके बदले सामान्यतः उन्हें उपज का छठा हिस्सा मिलता था। जमीन जोतने–बोने वाले लोग शायद मौर्य–काल के दासों, मजदूरों की तरह न होकर दर असल पट्टेदार होते थे, जो भू–स्वामी को उपज का एक अंश अदा करते थे।

जनजातिय इलाकों में किसानों को धार्मिक दानभोगी ब्राह्मणों के अधीन होना पड़ा। इस प्रवृत्ति का जोर छठी सदी में और अधिक बढ़ा। दान पत्रों में बटाई दारों तथा किसानों का विशेष रूप से सातवाहनों तथा कुषाणों के अधीन खूब विकास हुआ। किन्तु आगे के कालों में ये पतनोन्मुख हो चले थे। सीमित बाजार होने के कारण शिल्पी और व्यापारी भी गांवों में जा बसे और खेती–बाड़ी में लग गये।

जहाँ तक प्रारम्भिक मध्यकाल में भारतीय किसानों की अवदशा का सम्बन्ध है उसके पीछे बहुत से कारण थे। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण कारक यह था कि ग्रामवासियों के सिर पर करों का बोझ बहुत बढ़ गया। गृहिताओं को एक–एक कर वसूल करने का अधिकार तो दे ही दिया जाता था। कभी–कभी उन्हें इनके अतिरिक्त निश्चित, अनिश्चित, उचित, अनुचित कर लगाने और वसूल करने का अधिकार भी मिल जाता था।

किसानों की अधोगति इसलिये भी हुई कि अनुदान–भोगी अनुदत्त भूमि को फिर से अनुदान में अथवा खेती करने के लिए दे देता था। राजा के नीचे और असली जोतदार के ऊपर जमीन के एक ही टुकड़े पर किसी न किसी प्रकार का हक रखने वालों की चार श्रेणियाँ हुआ करती थी। इसका वर्णन धर्मशास्त्रों व अभिलेखों में हुआ है। यह प्रथा 5वीं सदी से लेकर 12वीं सदी तक खूब प्रचलित थी। उत्तर भारत के विभिन्न भागों में बड़े–बड़े किसानों का नया वर्ग उभरता दिखाई देता है, जिन्हें महत्तर कहा जाता था।

गुप्तकाल के अभिलेखों में खास प्रकार के कृषक समूहों का उल्लेख मिलता है जिन्हें कुटम्बिन कहा गया है। भारत में पूर्व मध्यकाल में कृषि का विस्तार बहुत तेजी से हुआ, इसका कारण अंशतः शहरों का ह्रास था। जहाँ सैनिकों, प्रशासकों, शिल्पियों, कारीगरों, व्यापारियों, पुजारियों व पुरोहितों आदि का जमाव था। लौह शिल्प का व्यापक चलन हुआ, मध्यकाल में लोहे का उपयोग काफी बड़ी मात्रा में होता था। 7वीं सदी के आस–पास अरहद या ईंट का प्रयोग आरम्भ हुआ। राजस्थान के बाद धीरे–धीरे यह पूरे उत्तर भारत में प्रचलित हो गया। तालाबों का प्रयोग और रोशनी से धान की खेती करने की विधि के कारण कृषि का इस क्षेत्र में अधिकार विस्तार हुआ।

पूर्व मध्ययुग तक आकर कृषि सुव्यवस्थित विकास हो चुका था, अनेक प्रकार के चावल, सरसों, प्रियुंग, जर्टिल, निवार आदि की खेती होती थी। मसूर, कलाय, इल्ला और आढ़क की दालें खाई जाती थी। जिन्हें सुनियोजित ढ़ंग से बोया जाता था। 17 प्रकार के अन्नों का उल्लेख हमें मेधा–तिथि में किया है। कपूर और अगुरू जैसे मूल्यवान पदार्थों का उत्पादन किया जाता था। शर्करा और इक्षुखण्ड मिठाईयाँ थी जिन्हें लोग बड़े चाव से खाते थे। उपज के अनुसार खेतों का वर्गीकरण हुआ था, जैसे– उपजाऊ (उर्वरा), बंजर(हरिल), परती (खिल), रेतीली(मरू), उच्च(मृतसा), शाण्डवल, नड़वाल, काली–पीली आदि सालीब्रीहि, कोहव, मृदगमाष, सरसों, मंग, अलसीय, बाजरी, सब्जी आदि विशेष भूमि में बोई जाती थी। हेमचन्द्र ने गोधूम, ज्वार, धान आदि का उल्लेख किया है। हल जोतने वालों को हलजीवी और खेत को क्षेत्र के नाम से कहा जाता था। खेत का विशेष व्यक्ति क्षेत्रज्ञ कहलाता था। इस युग में उपज प्रचुर मात्रा में होती था और सभी लोग सुख पूर्वक रहते थे। अनुर्वर भूमि को उसर कहा जाता था। किसानों को कुटुम्बी, कृषक, क्षेत्री, हली, कृषि बल आदि संज्ञाओं का अधिकार था।

शिल्प एवं शिल्पकारों की स्थिति पूर्वमध्य काल तक आकर समाज में विभिन्न उद्योग धन्धें विकसित हो गये तथा उनके माध्यम से लोग मनोनुकूल धन्धा अपनाकर जीवनयापन करते थे। मेधातिथि के अनुसार उस समय विविध परिधान कपास, ऊन व रेशम के तत्वों से बनते थे। सोमेश्वर, मार्कोपोलो, चाओजूकुआ और सोमदेव ने अनेकानेक वस्त्रों का उल्लेख किया है। जिससे लगता है कि उस समय वस्त्र उद्योग अत्यंत विकसित था। खजुराहों, भुवनेश्वर, कोणार्क आदि मंदिरों के

RRIJM 2015, All Rights Reserved

वस्त्राभूषण तत्कालीन जीवन की समृद्धि के प्रतीक हैं। वास्तु और शिल्प भी उस युग की अद्वितीय कला थी। मंदिरों की बनावट विभिन्न देवी–देवीताओं, पशु–पक्षियों, अस्त्र–शस्त्र, वाद्य–यंत्र आदि के रेखांकन समयुगीन जीवन की झांकी प्रस्तुत करते थे। साथ ही वास्तुकार भी अद्‌भुत कल्पना और कला का परिचय भी कराते है।

पूर्व मध्ययुग में भी धातु की अनेक वस्तुएं बनती थी। ह्वेनसांग ने लिखा है कि नालंदा में राजा पूर्ण वर्मा द्वारा बनाई गयी तांबें की बुद्ध की मूर्ति अस्सी 80 फीट ऊँची थी वहाँ मंदिर का निर्माण शीलादित्य ने करवाया था, जो 100 फीट ऊँचा था। कालांतर में राजा भोज ने धारा नगरी में 50फीट ऊँचा लोहे का स्तम्भ बनवाया था। उस युग में सोने–चांदी तथा अन्य धातुओं की विभिन्न वस्तुएं बनती थी। जिसमें राजसिंहासन, मूर्तियाँ तथा अन्य घरेलू सामान और भूषण होते थे। हेमचन्द्र ने स्वर्णकार, कमीर तथा तक्षापस्कर आदि की धातु का काम करने वालों का उल्लेख किया है। कमीर विभिन्न प्रकार के वस्त्र बनाता था। भोज के अनुसार बनारस, मगध, नेपाल, सौराष्ट्र और कलिंग – खड़ग बनाने के लिए विख्यात थे। पूर्व मध्य युग तक धातु और रतन का उपयोग चरम सीमा पर पहुँच चुका था।

व्यापार एवं व्यापारियों की स्थिति :

छठवीं शताब्दी से दूर देशों के साथ चलने वाले व्यापार का ह्रास होने लगा। तीसरी सदी में रोम साम्राज्य के पश्चिमी हिस्सें के साथ व्यापार बंद हो गया और छठी सदी में ईरान तथा वैजनिया साम्राज्य के साथ रेशम का व्यापार भी बंद हो गया। चीन और दक्षिण पूर्व एशिया के साथ भारत का थोड़ा बहुत वाणिज्य चलता रहा, परन्तु इसका लाभ भी बिचौलियों का काम करने वाले अरबों को ही मिलता था। भारत में मुसलमानी शासन की व्यवस्था के पूर्व ही अरबों ने भारत के निर्यात व्यापार पर लगभग अपनी इजारेदारी कायम कर ली थी। छठीं शताब्दी के बाद प्रायः 300 वर्षों तक व्यापार की अवनति की पुष्टि इस बात से होती है कि इस दौर में खासतौर से उत्तर भारत में आमतौर पर दक्षिण भारत में स्वर्ण मुद्रायें लगभग असभ्य हो जाती है और अन्य प्रकार के सिक्कों की भी भारी कमी दिखाई देती है। व्यापार के ह्रास के फलस्वरूप शहरों का क्षय हुआ।

आंतरिक व्यापारः चाहमान अभिलेखों से यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि अश्व विक्रेताओं, महाजनों, सेठों और घालक्य स्वामियों का व्यापार बहुत अच्छा चल रहा था। विशेष रूप से घोड़े और सांभर झील से प्राप्त नमक के व्यापार से राज्य को खूब चुंगी मिलती थी। चाहमान अभिलेखों के अनुसार राजस्थान में गेहूँ, चूना, तेल, पान, मसाला व दाल आदि का व्यापार खूब होता था। इसीप्रकार जस्तें, कपड़े के व्यापारियों और बुनकरों का उल्लेख भी देखने को मिलता है। परमार अभिलेखों से भी संकेत मिलता है कि राज्य में आंतरिक व्यापार अच्छे खासे पैमाने पर होता था। यहाँ जौं, रूई, कपड़ा, नमक, शक्कर और तेल का व्यापार होता था। गुजरात के व्यापारी जो वणिक कहे जाते थे काफी समृद्धशाली थे। वस्तुपाल, तेजपाल और जगडु यह तीन लक्षपति व्यापारी प्रसिद्ध थे। उत्तर प्रदेश में आंतरिक व्यापार के बहुत कम संकेत मिलते हैं।

विदेशी व्यापार : इस काल में विदेशी व्यापार के जो प्रमाण मिलते हैं वे सातवाहन और कुषाण काल में रोम साम्राज्य के साथ और गुप्त काल में पजनतानी साम्राज्य के साथ भारत के व्यापार की तुलना में कुछ नहीं है। फिर भी अरब सागर के माध्यम से भारत तथा पारस की खाड़ी और अरब के बीच समुद्री व्यापार अच्छे–खासे पैमाने पर चलता रहा। सातवीं सदी के अरब विवरणों में भारत के पश्चिमी तट पर स्थित कुछ बंदरगाहों का उल्लेख हुआ है।

चीन के साथ भारत का व्यापारिक सम्बन्ध था। पहले इस व्यापार पर मुख्यतः अरबों का एकाधिकार था और बाद में चीनियों का हो गया। पहले भारत से मुख्यतः विलासिता की सामग्री– मसाले, रेशमी वस्त्र और मलमल दूसरे देशों को भेजा जाता था। चीनी और अरब विवरणों के अनुसार इस काल में मालवा और गुजरात से ईख और अदरक भी बाहर भेजा जाता था। मोटे कपड़े, रूई से तैयार चीजें पटुवे और शक्कर का निर्यात बड़े पैमाने पर होता था। 11वीं सदी में भारत तथा पूर्वी इस्लामी दुनिया के बीच व्यापार को बड़ा उत्तेजन मिला। यद्यपि विद्वानों का ऐसा विचार है कि इस व्यापार का संतुलन भारत के ही पक्ष में ही था।

निष्कर्ष :

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि चौथी–सातवीं सदी में प्राचीन भारतीय जीवन उथल–पुथल और रूपांतरण की अवस्था से गुजर रहा था। समाज, अर्थव्यवस्थ, राज्य संरचना, भाषा, लिपि, चर्म तथा भौतिक जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। उनके सम्बन्ध में कोई समग्र दृष्टि अपनाना और उनके संगम का निर्देश और व्याख्या एक कठिन कार्य है किन्तु इस दिशा में प्रयास करना आवश्यक है। मध्यकाल की अवधारणा और उसमें सम्मिलित तत्वों के विश्लेषण तथा स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। मध्यकाल के उद्‌भव बिंदुओं का निरूपण राजनीतिक तथा राजवंशीय इतिहास के संरक्षण से अपितु भारतीय जीवन के सभी पहलुओं के समग्र अध्ययन द्वारा ही किया जा सकता है। इस काल में पर्याप्त मात्रा में सिक्कें जारी नहीं किये गये धरती को ही असली धन समझा जाता था और सिक्कें की गिनती धन के रूप में बहुत कम की जाती थी। नगदी के इस अभाव के कारण सैनिक प्रशासनिक तथा धार्मिक तीनों प्रकार की सेवाओं का प्रतिदान भूमिदान के रूप में किया जाता था। इस काल में कृषि, शिल्प और व्यापार का काफी विकास हुआ। इस समय शहरों का ह्रास हुआ और गावों का अभूतपूर्व विकास हुआ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्राचीन लेख माला – पृष्ठ 24

2. अर्थशास्त्र –
3. हर्षचरित – पृ0 82
4. अबुजैद सॅराफी – पृ0 135
5. बैजन्ती – पृ0 1.60 –1.65
6. तिलमंजरी – पृ0 112, 117
7. ग्यारहवीं सदी का भारत – पृ0 42, 57
8. एन्शिएन्ट एकाउण्टस् ऑफ इण्डिया एण्ड चाइना – पृ0 172
9. द एज ऑफ इम्पिरियल कन्नौज – पृ0 401
10. काव्य मीमांशा – पृ0 10
11. कात्यायन – पृ0 705, 706
12. याज्ञ – पृ0 02, 168
13. विनय पीटक – पृ0 4.226
14. नीति वाक्यामृत – पृ0 19.21
15. एस.के.मित्र – द अर्ली रूल्स ऑफ खजुराहों
16. रमा नियोगि – हिस्ट्री ऑफ द गाहड़वालाज
17. एम. ए. स्टीन – राजतरंगिणी अनुवाद
18. ए.के मजूमदार – दि चालुक्याज ऑफ गुजरात
19. पी. नियोगी – दि इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया
20. एच. डी. संकालिया – आर्कियालोजी ऑफ गुजरात

RRIJM 2015, All Rights Reserved